www.researchvidyapith.com ISSN (Online): 3048-7331

Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal

(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)

(Multidisciplinary, Monthly, Multilanguage)

*** Vol-2* *Issue-4* *April 2025***

दलितों की राजनीतिक चेतना

डॉ0 शैलेन्द्र कुमार

पीएच०डी०, राजनीति विज्ञान विभाग, भू०ना०मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

सारांश–

दलितों की राजनीतिक चेतना दलित राजनीति, दलित आंदोलन का एक राजनैतिक स्वरूप हैं। दलितों की राजनीतिक चेतना का मूल प्रेरक दलित चेतना है। दलित लेखकों के लिए दलित चेतना जाति प्रथा अपने वजूद और आजादी की एक लंबी लड़ाई की ओर इशारा करती है। वहीं दूसरी और दलित समाज शास्त्री और राजनीतिक शास्त्री की दृष्टि से चेतना पुरातन रूप से दलितों में रही है। इतिहास गवाह है कि जाति व्यवस्था की स्थापना और उसका कायम रहना तथा कथित उच्च जातियों के लिए ही फायदेमंद रहा है। समाज में दलितों के पैरों में इतनी भारी बोझ डाल दी कि धर्म परिवर्तन के बावजूद उनकी मुक्ति का मार्ग अवरुद्ध ही रहा है। इसी तरह देश व समाज पर सतही नजर रखने वाला भी यह आसानी से समझ सकता है कि जैसे–जैसे दलित चेतना में परिवर्तन हुई वैसे ही राजनीतिक शक्ति बदलती जा रही है। परन्तु विकसित करने के लिए एक विमर्श की अवश्यकता है।

शब्द कुंजी– सामाजिक, सांस्कृतिक, विचारधारा, समावेश, उपेक्षा, कांग्रेस, जाति व्यवस्था।

भूमिका

दलित आंदोलन भारतीय समाज में उपनिवेश काल के पूर्व चलता रहा है लेकिन उसके पुखता प्रमाण उपनिवेश काल के समय से मुखर हुए क्योंकि इससे पहले दलित जातियों में शोषण के खिलाफ संगठित आवाज नहीं उठी थी। दलितों की राजनीतिक चेतना का मूल प्रेरक दलित चेतना है। दलित चेतना को अंग्रेजी में दलित कोन्शसनेस कहा गया है। और आजादी की एक लंबी लड़ाई की और इशारा करती है। वहीं दूसरी और दलित समाज शास्त्री और राजनीतिक शास्त्री की दृष्टि से यह चेतना पुरातन रूप से दलितों में रही है। उदाहरण के तौर पर मध्यकालीन युग में चोखा मेला रविदास इत्यादि स्रोतों ने हमेशा ही जात–पात की नीतियों पर जमकर आक्रोश प्रकट किया है। प्रोफेसर विवेक कुमार अपनी किताब indian roaring revolution dalit assertion and new horizons मैं लिखते हैं कि दलित राजनीतिक चेतना मूल रूप से दो प्रकार से समझा जा सकता है। भारत में दलित राजनीति पर विश्लेषण यहां की सामाजिक सांस्कृतिक संरचना के सापेक्ष व्यक्तिगत चेतना से परे सर्वाधिक तर्कसंगत एवं सुव्यवस्थित ज्ञान के बिना वस्तुनिष्ठा तक नहीं पहुंच सकते हैं। दलित राजनीति पर अध्ययन कई विधाओं के विद्वान अपने विषय की सीमा में रहकर करते हैं इस पर तार्किक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए एक विमर्श की आवश्यकता है। भारतीय समाज में सशक्तिकरण और समानता की आभा बनाए रखने के लिए दलित आंदोलन उच्च वर्ग के लोगों और उनकी ब्राह्मणवादी विचारधारा के खिलाफ निम्न जाति के लोगों के समूहों द्वारा एक संगठित सामूहिक कार्रवाई है। भारत में पुनर्जागरण आंदोलन के कारण देश के विभिन्न हिस्सों में एक नई चेतना पैदा हुई। बी आर अंबेडकर ने दलित आंदोलन को एक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने दूरगामी लक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में दलितों के आंदोलन को खड़ा किया। उन्होंने अछूतों एवं दलितों को विशेष सुविधा दिलाने के लिए अपना आंदोलन और तेज कर दिया। जिसके फलस्वरुप 1932 में एक महत्वपूर्ण समझौता हुआ। बिहार में दलित समस्या के संदर्भ में महादलित आयोग का गठन किया गया। फिर

भी देश और समाज आज दोहरे बंधनों से जाकर हुआ है।

दलित स्वालंबन की लड़ाई भारतीय राज्य की स्थापना से पूर्व चली आ रही है। इसलिए इसकी यह दो मुख्य धाराएं हैं एक धारा राष्ट्र के अंतर्गत तो दूसरी धारा राष्ट्र विचारधारा को बिल्कुल भी नजर में नहीं रखती, क्योंकि इसकी नींद रात से भी पुरानी है। इस धारा का सीधा टकराव ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था को लेकर है। दूसरी विचारधारा में ब्राह्मणवादी टैक्टर का समावेशन देखा जाता है। इसलिए ब्राह्मणवादी समाज और भारतीय राष्ट्र दोनों की ही जोरदार आलोचना होती है। प्रोफेसर कांचा इलैया जैसे दलित चिंतक की किताब why i am not a hindu इस विचारधारा को अंकित करती है। प्रोफेसर विवेक कुमार आगे बताते हैं कि dependet dalit political leadership हमेशा से ही मुख धारा के राजनीतिक जीवन के अंतर्गत ही चलती आई है और हिंदू समाज के अंतर्गत ही दलित समस्या का समाधान खोजती रही है। अंबेडकर के समय से चली आ रही republican party of indian कांग्रेस के साथ गत जोड़ करके दलित मुद्दों का प्रतिनिधित्व करती रही। वहीं दूसरी ओर independent dalit political leadership 1935 के दौर से ही अपना स्वाधीन पक्ष हिंदू समाज के उपेक्षा में रखती आई। किसी इंडिपेंडेंट पॉलीटिकल लीडरशिप का एक पहलू अंबेडकर राजनीति के सेपरेट इलेक्टरेट की मांग भी कहा जा सकता है। गोपाल गुरु और भाजपा के 90 दशक के गठजोड़ में सर्वजन की राजनीति पर लिखते हैं कि किस तरह दलित राजनीति राष्ट्र विचारधारा के अंतर्गत सीमित होने पर मजबूर है। यही मजबूती मान्यवर काशीराम को भी देखनी पड़ी थी। उसे समय दलित मोर्चा अध्यक्ष महिपाल सिंह ने इस पर जोर देते हुए तंज कसते हुए कहा था कि बसपा का हाथी अब तक मनुवादियों का गणेश बन चुका है। इस पर मान्यवर काशीराम भाजपा को सीढी के सीधी के रूप में इस्तेमाल करने का एक जरिया मात्र बताते रहे थे। उनका मानना था कि जब तक भाजपा का इस्तेमाल अपने समुदाय के हितों के लिए किया जा सकता है तो वह उसे गठबंधन को अवश्य ही अपनाएंगे। यह मजबूरी स्वयं अंबेडकर ने भी महसूस की थी खासकर पूनम पेस्ट के समय जहां महात्मा गांधी अंबेडकर को यह समझा रहे थे कि दलित मुद्दा राष्ट्रीय हित में समाया हुआ है तब से आज तक यह तय नहीं हो पाया है कि इस राष्ट्रीय हित में दलितों का हित कितना है। इसलिए निरंतर ही दलित चेतना राष्ट्रीय हित को कटघरे में बुलाती रही है। इस संदर्भ में आर्टिकल 370 को लेकर अंबेडकर के बयान को शामिल करना एक बार फिर से यह दर्शाता है कि दलित राजनीति और चेतना को किस तरह से राष्ट्रीय विचारधारा के ढांचे में तब्दील किया जा रहा है। दूसरे शब्दों में यह केवल अंबेडकर का ही राष्ट्रीयकरण नहीं है बल्कि दलित चेतना का भी राष्ट्रीयकरण है। वह चेतन जो की राष्ट्रीय विचारधारा के दोनों और समय हुई है आदि हरबर्ट मारखेज के शब्दों में कहे तो दलित चेतना एक प्रति सांस्कृतिक चेतना है और इसीलिए विद्रोही भी इस चेतना का भारतीय सामाजिक संरचना है जो न सिर्फ जाति पर आधारित है बल्कि इन जाति व्यवस्था को धार्मिक वैधता भी प्राप्त है। यहां हमें यह भी समझ लेना होगा कि हमारी जाति व्यवस्था सामाजिक दुराव के सिद्धांत पर आधारित है। प्रसिद्ध समाज शास्त्री एम एन श्रीनिवास के शब्दों में जाति भारतीय जीवन शैली का सामान मुहावरा है यह हमारे व्यक्तिगत संबंधों को ही नहीं वरन सामाजिक आर्थिक राजनीतिक एवं आध्यात्मिक संबंधों को भी प्रभावित कर करती रही है। भारत के समाज के निचले पायदान पर खड़ी जातियां आर्थिक कठिनाइयों से इतनी विचलित नहीं होती जितनी कि आरोपित नीचे की संस्कृति चेतना से और यह नीच परिणाम है कि हिंदू समाज की वर्ण व्यवस्था के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण का जिसके चलते इस सामाजिक अन्याय को वैध मान लिया गया है।

हिंदू समाज की सताई जानकारी रखने वाले भी जानते हैं और मानते हैं कि जाति व्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर सदियों से खरीद दलितों की मुक्ति के लिए इससे कोई जगह नहीं है और यही कारण है कि जब भी हमारे देश में किसी मुक्तिकामी विचारधारा का विकास हुआ तो उसमें दलितों की भागीदारी सबसे ज्यादा हुई। व्यावहारिक स्तर पर हिंदू धर्म की जो अवधारणा आम आदमी तक पहुंचती है वह बहुत हद तक जातीय आचार व्यवहार और संस्कार से परी सीमित हुई रहती है जिन्हें आज हम दलित के नाम से जानते हैं। यहां यह जान लेना आवश्यक है कि भारत में जी मानव समूह को वर्ण व्यवस्था में जगह प्राप्त नहीं होती थी उसे उन अधिकारों से भी वंचित रहना पड़ता था। वंसगत अछूत इसी व्यवस्था का स्वाभाविक परिणाम है। समाज में जब धर्म की सत्ता हो तो मुक्ति का मार्ग केवल मोक्ष ही हो सकता है और हिंदू समाज में मोक्ष का एकमात्र उपाय था जातीय कर्मों का निष्ठा पूर्वक पालन। जाति आधार पर वर्ण का विभाजन इसी कर्म सिद्धांत का व्यावहारिक रूप था। ब्राह्मणों के लिए जहां पठन–पाठन वेद का नियमन हुआ वहीं शुद्रो के लिए उच्च वर्णों की निस्वार्थ सेवा का।

सूत्रों को सेवा भी किसी तन मन के साथ करनी थी की सेवा करते समय उन्हें किन्हीं कर्म से उनके मन में ईर्ष्याभाव का समावेशन ना हो। इस दमघोट वातावरण से निजात पाने की चाहत मन में कैसे नहीं होगी।

समाज ने दलितों के पैरों में इतनी भारी भोज डाल दी कि धर्म परिवर्तन के बावजूद उनकी मुक्ति का मार्ग अवरुद्ध ही रहा। धर्म तो बदल गया लेकिन जाती पूर्वत बनी रही। यानी धर्म परिवर्तन भी उनके लिए मृग मरीचिका ही साबित हुआ। इस तरह जाति व्यवस्था भारतीय सत्ता तंत्र की धुरी है एक ऐसी सामाजिक और राजनीतिक हकीकत है जिसे सांस्कृतिक वर्चस्व की शक्ति हासिल है। इस प्रकार देश व समाज पर सताई नजर रखने वाला भैया आसानी से समझ सकता है कि जैसे–जैसे दलित चेतना में परिवर्तन हुई वैसे ही राजनीतिक शक्ति बदलती जा रही है। आज दलित एवं पिछड़े वर्ग के सजग युवाओं में चेतना आ रही है लेकिन सदियों के दमित समाज में नासमझ एवं भ्रमित युवाओं की संख्या भी कम नहीं है। इसलिए आवश्यकता है कि संविधान में वर्णित समता समानता एवं बंधुत्व की अवधारणा को पुनर्स्थापित किया जाए।

संदर्भ सूची

1. श्री भगवान सिंह, गांधी और दलित भारत जागरण, वाणी प्रकाशन।
2. सुखदेव थोरात, निधि सभरवाला, दलित सशक्तिकरण सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण।
3. जीएल शर्मा, सामाजिक मुद्दे, रावत प्रकाशन।
4. जीके अग्रवाल, भारतीय समाज मुद्दे एवं समस्याएं, एसबीपीडी पब्लिशिंग हाउस।
5. डॉ. एस सी सिंहल, भारत में राजनीतिक प्रक्रिया, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।
6. बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम, नई दिल्ली 2001
7. पिछड़ा वर्ग (पिछड़ा वर्ग संघ का प्रमुख पत्र) वर्ष 5 अंक 3 4, 18 मई 1953
8. द सर्चलाइट, 11 और 12 दिसंबर 1954, प्रदीप,13 दिसंबर 1954
9. राम चंद्रिका, ए प्लान फॉर हरिजन एंड अदर बैकवर्ड क्लासेस नई दिल्ली, 1951
10. बिहार राज्य दलित वर्ग संघ का वार्षिक प्रतिवेदन, 1958 59 पटना 1959
11. https www-inditoday-in

Cite this Article-

'डॉ0 शैलेन्द्र कुमार', 'दलितों की राजनीतिक चेतना', Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal (RVIMJ), ISSN: 3048-7331 (Online), Volume:2, Issue:04, April 2025.

Journal URL- https://www.researchvidyapith.com/
DOI- 10.70650/rvimj.2025v2i4003
Published Date- 06 April 2025